अध्यापक शिक्षा के सरोकार

✧ सुदर्शन अय्यंगार

विद्या भवन गोविन्द राम सेकसरिया शिक्षक महाविद्यालय के पूर्व प्राचार्य पी.एल. श्रीमाली की स्मृति में प्रतिवर्ष एक व्याख्यान आयोजित किया जाता हैं जिसमें देश के ख्यातिनाम शिक्षाविदों को आमंत्रित किया जाता है। इस वर्ष 26 अप्रैल 2014 को आयोजित व्याख्यानमाला में गूजरात विद्यापीठ विश्वविद्यालय के कुलनायक प्रो. सुदर्शन अय्यंगार का व्याख्यान हुआ। प्रस्तुत है अध्यापक शिक्षा के सरोकार पर उनके विचार...

आज की इस व्याख्यानमाला के प्रसंग पर उपस्थित सभा के अध्यक्ष आदरणीय रियाज़ जी, शर्मा जी, अशोक भाई, स्नातक परिषद् के पदाधिकारी सदस्य, भाईयो–बहनो, सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण विद्यार्थियो!

दरअसल आज मुझे यहां आकर बहुत अच्छा लग रहा है। मैं यहां पहले भी दो बार आ चुका हूं। यहां आकर अच्छा इसलिए लगता है कि यहां शिक्षा के बारे में एक गंभीर, शिक्षा–विमर्श व चिंतन होता रहता है। इस 'पी.एल. श्रीमाली व्याख्यानमाला' की कड़ी में मैं क्या करूंगा, ये पता नहीं है। आपने मेरे परिचय में देख लिया होगा। कहीं ये नहीं लिखा हुआ है कि मैं किसी शिक्षक महाविद्यालय में पढ़ाता हूं, प्रिंसीपल हूं। ऐसा कुछ भी नहीं हूं। गूजरात विद्यापीठ का कुलनायक बना क्योंकि यह एक शिक्षक महाविद्यालय है, एक शिक्षक महाविद्यालय में शिक्षकों से बातचीत होती रहती है और कभी–कभी उनकी यह अपेक्षा होती है कि आप कुलनायक हैं। इसलिए कुछ करें, तो उससे कुछ समझ बनी है। दूसरी बात यह है कि मोहन दास करमचंद गांधी एक व्यापारी, जिसने कोई काम नहीं छोड़ा, शिक्षा को भी नहीं छोड़ा और ऐसा नहीं कि सिर्फ विचार प्रकट किए। पहले तो टीचर बन के दिखाया, बच्चों के साथ फंस गया, दक्षिण अफ्रीका ले गया अपने बच्चों को। वहां उसके अंदर इच्छा जागृत हुई, कि मैं अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम के इन स्कूलों में नहीं पढ़ा सकता हूं, और कोई स्कूल है नहीं, क्या किया जाए? तो उन्होंने कहा मैं पढाऊंगा। अब उसके पास समय तो था नहीं! उसने लोगों को जोड़ा और साथ में एक परिवार के तौर पर परिवार के बच्चों का शिक्षक हुआ और उससे काफी चीजें सीखी। इसीलिए शिक्षा के क्षेत्र में भी मोहन दास करमचंद गांधी की पैनी दखल है। इसके चलते गांधीजी के विचारों को जानने की जब कोशिश होती है तो उसकी शिक्षा को भी समझना पड़ता है, पढ़ना पड़ता है। इसीलिए मैंने कहा कि मैं शायद अध्यापक शिक्षा के बारे में थोड़ी बात करूंगा। मैं अपनी समझ रखने वाला हूं। हो सकता है कि ये बहुत पहले से ही आप लोगों को पता हो क्योंकि आप इस क्षेत्र में हैं। हां, विद्यार्थियों के लिए शायद कुछ नई बात हो सकती है और यह भी हो सकता है कि वे कहें कि ये कर क्या रहा है। तो ये देखेंगे बाद में।

यह व्याख्यान मैं इस भूमिका के साथ करना चाहता हूं कि आज के यांत्रिक युग में किसी भी क्षेत्र



में प्रश्नों का हल यंत्राधारित तंत्रमूलक उपायों में ढूंढा जाने लगा है। वैसे ये समयोचित तो हो सकता है पर कालजयी नहीं है क्योंकि यंत्राधारित तंत्रमूलक उपाय उन प्रश्नों का जवाब नहीं ढूंढ पाते, जो व्यक्ति के मानस से जुड़े हैं। स्वस्थ समाज की निर्माण प्रक्रिया में जो भी सम्पोषितता हो। मैंने 'सम्पोषित' शब्द का प्रयोग सतत व टिकाऊ विकास की अपनी बात रखने के लिए किया है। मैं उस शब्द का अर्थ परस्पर पोषण करने वाला मानता हूं और स्वस्थ समाज में प्रकृति और मनुष्य के संबंध में परस्पर पोषण करना बहुत जरूरी है। ऐसी समझ से उस स्वस्थ समाज के निर्माण की प्रक्रिया में, जो सम्पोषित हो, व्यक्ति का मानस स्वस्थ हो, यह आवश्यक शर्त है। स्वस्थ समाज की व्याख्याएं अलग–अलग हो सकती हैं परंतु मैं गांधीजी द्वारा प्रस्थापित अहिंसक समाज को आदर्श मानकर चल रहा हूं। जो व्यक्ति, समष्टि और प्रकृति तीनों के बीच संवाद कायम करने की क्षमता रखता है। ऐसे दर्शन और समझ से मानव–केन्द्रित प्रयास हो और शिक्षा मानस परिवर्तन के लिए हो जिससे शरीर का श्रम, यंत्र और तंत्र के साथ मिलकर संवादी समाज की संरचना में सहायक बने। ये दर्शन और समझ कहीं पीछे छूट गए हैं और इसका मूल कारण यह है कि आजादी के तुरंत बाद नए और आधुनिक भारत की जो कल्पना की गई वह गांधीजी के ग्राम स्वराज की कल्पना से मेल नहीं खाती थी।

''स्वस्थ समाज की व्याख्याएं अलग–अलग हो सकती है परंतु मैं गांधीजी द्वारा प्रस्थापित अहिंसक समाज को आदर्श मानकर चल रहा हूं। जो व्यक्ति, समष्टि और प्रकृति तीनों के बीच संवादिता कायम करने की क्षमता रखता है। ऐसे दर्शन और समझ से मानव–केन्द्रित प्रयास हो और शिक्षा मानस परिवर्तन के लिए हो जिससे शरीर का श्रम, यंत्र और तंत्र के साथ मिलकर संवादी समाज की संरचना में सहायक बने।''

इस मुद्दे को मैं आज अध्यापक शिक्षा की पहली चुनौती के रूप में प्रस्तुत करता हूं। मैंने थोड़ा सा पढ़ा है इसलिए कह सकता हूं कि गांधी बहुत आधुनिक आदमी थे जैसे–जैसे मैं बात करूंगा आपकी समझ में थोड़ा–थोड़ा आएगा, पूरी बात के लिए बैठना पड़ेगा।

अब यह क्या हो रहा है, मोहन दास करमचंद गांधी के बारे में हम लोग क्यों इतना सोच रहे हैं और क्यों कह रहा हूं कि आजादी की शुरुआत से गड़बड़ कर दी क्योंकि उस समय भी कुछ लोग थे, उन युवाओं के नेता थे– जवाहर लाल नेहरू।

जवाहर लाल नेहरू और गांधीजी की कथा कहने से पहले थोड़ा और पीछे जाना पड़ेगा और समझना पड़ेगा कि यह चुनौती सिर्फ भारत के लिए नहीं है। यह चुनौती विश्व के साथ भी खड़ी हुई है। मानव जाति के विकास की प्रक्रिया से यह जुड़ी हुई है और पुनरुत्थान के

काल से ही ये धीरे–धीरे खड़ी हुई। अंग्रेजों के भारत आकर हमें गुलाम बनाने से लेकर आजादी की लड़ाई और उसके बाद स्वतंत्र भारत देश के नवनिर्माण की कल्पनाओं के साथ जुड़ गई। जिसे हम सामान्य तौर पर मैकॉले पद्धति कहकर नकारते हैं। इसलिए थोड़ा पीछे जाना होगा।

विश्व की एक अनोखी शाला जिसकी कहानी खुद शाला के संस्थापक ने लिखी है ए.एस.नील जिनके स्कूल का नाम था 'समर हिल'। आप जानते होंगे। अभी एकलव्य भोपाल ने इसका अनुवाद करके बहुत अच्छा काम कर दिया, जो उपलब्ध है। 2004 में शायद पहला संस्करण हुआ, जिसका 2011 में पुनर्मुद्रण हुआ। इन्होंने अपनी पत्नी के साथ इस शाला की शुरुआत जर्मनी में की, इसके बाद इंग्लैंड आए और यहां के एक गांव में यह शाला चली। अभी इसकी ज्यादा बात नहीं करेंगे। इस पुस्तक में नील ने अपने 40 साल के अनुभवों को लिखा है। इस पुस्तक के प्राक्कथन में एरिक फ्रॉम इस चुनौती के बारे में जिक्र करते हैं, जो हमें समझना चाहिए। वो लिखते हैं कि 18 वीं सदी के प्रगतिशील विचार– आजादी, लोकतंत्र और आत्मनिर्णय खूब फले–फूले पर 20 वीं शताब्दी के पहले ये विचार शिक्षा के क्षेत्र में फैलने लगे थे। 'सत्ता के बदले आजादी' इसका मूलमंत्र था। बच्चे बिना दबाव के अपनी सहज जिज्ञासा और स्वतः स्फूर्त विचारों को व्यक्त करें और शिक्षक उन आवश्यकताओं को समझें और उन्हें वैसे पढ़ाते हुए आसपास की दुनिया में रुचि जगा दें। इसे आधुनिक और प्रगतिशील समझा जाने लगा। हम आप में से आज भी बहुतेरे शिक्षक और संचालक इस विचार के कायल होंगे और यह बात वैज्ञानिक परिबलों की कसौटी पर भी ठीक बैठती है। परंतु इसमें मुश्किल कहां आ खड़ी हुई।

द्वितीय विश्व युद्ध से पहले और बाद में इस विचार की बड़ी समीक्षा हुई, पर जैसा एरिक फ्रॉम समझाते हैं; गलती विचार में नहीं उसके अमल में है और उसका कारण बहुत गहरा है। स्वतंत्रता को



बढ़ावा देने वाले समाज में निर्णायक सत्ताधारी वर्ग सत्ता का सीधा प्रयोग नहीं करता क्योंकि वह तो परतंत्रता की ओर ले जाने वाला होगा। इसीलिए वहां परोक्ष सत्ता का आविर्भाव होता है। सत्तावान सीधे–सीधे कहता है कि तुम अधीनस्थ हो, मैं जैसा कहूं वैसा करो अन्यथा मत बोलो। परोक्ष सत्ता किसी वर्ग द्वारा परिचालित हो, ऐसा जरूरी नहीं है, वह अज्ञात स्वरूप में रहकर परिचालित होती है। आधुनिक समाज में ज्यादातर ऐसा ही हुआ है और आज भी ऐसा हो रहा है। अगर यह सुनने में कठिन लगता है तो मैं थोड़ी देर में इसे सरल करूंगा और आपको लगेगा कि ऐसा तो कुछ हो ही रहा है।

'एरिक फ्रॉम' कहते हैं कि आधुनिक औद्योगिक समाज की संगठनात्मक जरूरतों के कारण 19 वीं शताब्दी की प्रत्यक्ष सत्ता 20 वीं शताब्दी की अज्ञात सत्ता में बदली। पूंजी के केन्द्रीकरण ने विशाल उद्योगों को जन्म दिया। जिनकी व्यवस्था पद के क्रम में श्रेणी अफसरशाहियों के हाथ में थी। इनमें कार्मिकों के विशाल समूह एक साथ काम करते हैं। यहां प्रत्येक कार्मिक मशीन का एक पुर्जा भर होता है। 'पहिये के दांता पेच', या 'मशीन के कल–पुर्जे' ये बात बहुत चली थी और वो 'मशीन के कल–पुर्जे' की बात चार्ली चैपलिन की एक फिल्म में आई थी। ये सब पुरानी बातें हैं पर फिर भी आपको चार्ली चैपलिन की फिल्म देखनी चाहिए। यहां प्रत्येक कार्मिक मशीन का पुर्जा भर होता है। ऐसे उत्पादन संगठन में व्यक्ति प्रबंधित भी होता है और संचालित भी। इसका अर्थ आप लोगों की समझ में आया! बचपन से ही आपके मां–बाप ने कहना शुरू किया और फिल्म में गीत भी आया 'पढ़ोगे लिखोगे तो बनोगे नवाब घूमोगे–फिरोगे तो होगे खराब!, रहे पढ़ाई या लिखाई में जीरो, टाई लगाकर मानो बन गए जनाब हीरो।' ये सारी चीजें समाज में कही जाने लगी। ये इसलिए कही जाने लगी कि एक अज्ञात सत्ता काम कर रही थी। जिसने कहा कि तुम ऐसे नहीं पढ़ोगे तो फंस जाओगे, ग्रेजुएट नहीं होओगे तो तुम्हें कोई घास नहीं डालेगा तुम पोस्ट ग्रेजुएशन नहीं करोगे तो फलां नहीं होगा, तुम इंजीनियर नहीं होगे तो तुम्हारे पास स्कूटर नहीं आएगा, तुम एमबीए नहीं करोगे तो तुमको कोई नौकरी पर नहीं रखेगा, है ना ठीक! बचपन से मां–बाप तो कह ही रहे हैं। मुझे भी मेरे मां–बाप ने कहा था और मैंने भी अपने बच्चों को एकाध बार तो कह ही दिया होगा, इतना समझदार होने के बावजूद।

व्यक्ति इस समाज में स्वतंत्र है और उसे अपनी स्वतंत्रत अभिव्यक्त करने का मौका मिलना चाहिए ताकि उसकी सारी सृजनात्मक शक्तियां पूरी तरह से कुसुमित होकर समाज को अच्छा बनाए। वो इसका कथित उद्देश्य है पर समाज की उस व्यवस्था में हमें रोज कहा जाता है कि विशेष योग्यता नहीं लाओगे तो तुम पिछड़ जाओगे, प्रतिस्पर्धा के माहौल में तुमको ये करना है, तुम्हें प्रतियोगी परीक्षा देनी है, तुम कहां घूम रहे हो, घर में बैठ कर पढ़ाई करो। प्रतियोगी परीक्षा देनी है, तुम कहां घूम रहे हो, घर में बैठ कर पढ़ाई करो।

मैं यह कहना चाह रहा हूं कि अज्ञात सत्ता कितनी शक्तिशाली होती है। हमसे ये कहलवाती है। और दावा क्या है? इस आधुनिक और प्रगतिशील समाज का दावा यह है कि व्यक्ति इस समाज में स्वतंत्र है और उसे अपनी स्वतंत्रत अभिव्यक्त करने का मौका मिलना चाहिए ताकि उसकी सारी सृजनात्मक शक्तियां पूरी तरह से कुसुमित होकर समाज को अच्छा बनाए। वो इसका कथित उद्देश्य

है पर समाज की उस व्यवस्था में हमें रोज कहा जाता है कि विशेष योग्यता नहीं लाओगे तो तुम पिछड़ जाओगे, प्रतिस्पर्धा के माहौल में तुमको ये करना है, तुम्हें प्रतियोगी परीक्षा देनी है, तुम कहां घूम रहे हो, घर में बैठ कर पढ़ाई करो। ये सिर्फ बच्चों के साथ नहीं हो रहा है ये उत्पादन की सारी व्यवस्थाओं में भी हो रहा है। जहां सारा उत्पादन केन्द्रीकृत है और उसको चलाने के लिए प्रबंधन और संचालन हो रहा है। हम लोग समझ रहे हैं कि आज की शिक्षा भी हमें उसी ओर धकेल रही है। इस दर्शन से अपना मतभेद रखते हुए भी हम खुद उस दिशा में चलते हैं और आप लोगों को उसी दिशा में ले जाते हैं।

ये तो बात हुई उत्पादन की। उपभोग तो इससे भी गंभीर है। उपभोग के क्षेत्र में जहां कहने को व्यक्तियों को चुनाव की स्वतंत्रता है। उपभोक्ता वरीयता, उपभोक्ता प्रभुता! हम लोग अर्थशास्त्र की कक्षा में सबसे पहले ये सिखाते हैं कि उपभोक्ता जो है, भगवान है। दुकानों में भी लिखा होता है ग्राहक भगवान है, सबसे ऊंचा है; उसे वरीयता है पसंदगी की, चुनाव की स्वतंत्रता है। उसे भी ठीक इसी तरह प्रबंधित और संचालित किया जाता है; बात चाहे भोजन, वस्त्र, शराब–सिगरेट, या कोई टेलीविजन कार्यक्रम हो, हर जगह एक सशक्त सुझाव तंत्र सतत् काम करता है। इस सुझाव के दो उद्देश्य होते हैं– पहला उद्देश्य है लगातार व्यक्ति में नए–नए उत्पादों की भूख बढ़ाना, दूसरा, इस भूख को उस दिशा में मोड़ना जो कुछ लोगों के लिए सर्वाधिक फायदेमंद हो। अगर आपको लग रहा हो कि सहारा का सुब्रतो राय पकड़ा गया है, उसके मन में क्या भगवान बस गया है कि, या वो क्रिकेट का बड़ा फैन हो गया है कि सबको बूट, चप्पल, बैग सब देता रहता है। ऐसा आपको लग रहा होगा कि वाह! विराट कोहली को एक करोड़ का चेक मिल गया, मजा आ गया, चलो क्रिकेट खेलते हैं। वो चाह रहा है कि विराट कोहली जब क्रिकेट खेल रहा हो तो उस पर नजर कम और सहारा पर ज्यादा रहे। जहां तक माल बेचने की बात है तो हमें बचपन से कोई कह रहा है कि ये साबुन लगाने से गोरा हो जाओगे और सुंदर बन जाओगे। अब तक तो ये साबुन और गोरेपन का चक्कर महिलाओं तक ही सीमित था। आजकल शाहरूख खान हमको बता रहे हैं कि दूसरा लड़का जो फेयर एंड लवली लगाता है, वह शाहरूख खान से भी गोरा और अच्छा दिखता है और लड़कियां वहां भाग रही हैं।

इस सारे तंत्र को बड़ी गंभीरता से समझने की जरूरत है कि जिस स्वतंत्रता की कसमें आपको दिलाई जा रही हैं; इस आधुनिक और प्रगतिशील समाज में जिस स्वतंत्रता को आप महसूस करना चाहते हैं और कहना चाहते हैं –इट्स माइ लाइफ! बट इट इज नॉट योर लाइफ; क्योंकि हमने सब संचालित कर रखा है। आप कौनसा टूथपेस्ट इस्तेमाल करेंगे, इसको भी आप तय नहीं करते हैं, इसके लिए भी कुछ न कुछ तंत्र काम कर रहा है और वह तंत्र एक दिशा में ले जाने की कोशिश कर रहा है। कुछ थिसिस की मुश्किल है; जो थीसिस स्वतंत्रता के नाम पर शुरू हुई थी, मनुष्य को मुक्त करने के लिए, सत्ता से मुक्ति और अपनी स्वतंत्रता को सर्वोच्च बनाने के मानव के प्रयास में जो व्यवस्थागत यंत्र आधारित–तंत्र मूलक उपाय हमने ढूंढे हैं, उसमें आम आदमी छटपटा रहा है, इस चुनौती की मैं बात कर रहा हूं।

अब यहां एक बात जो मेरी जानकारी में कम है, अध्यापक शिक्षा के और अन्य शिक्षाविद् इस पर चर्चा करें कि क्या सही है और किस तरफ रहना चाहिए कि किसी समाज के अंदर शिक्षा–समाज में होने वाले परिवर्तनों के अनुकूल होनी चाहिए या प्राथमिक तौर पर शिक्षा ही एक ऐसा साधन है जिसके आधार पर समाज का नव निर्माण हो। इस

पर सब विद्वानों में आज मतभेद है और वे सारे विद्वान ये मानते हैं कि समाज में जो परिवर्तन होते रहते हैं, वे परिवर्तन शिक्षा से स्वतंत्र है। अपने अलग परिबलों से समाज में परिवर्तन आ रहा है। इसीलिए शिक्षा व्यवस्था को चाहिए कि उन परिवर्तनों के अनुकूल होकर अपनी पद्धतियों को, अपने कार्यक्रमों को, पाठयक्रमों को बदलते रहे। मोहन दास करमचंद गांधी मानते थे कि ये गड़बड़ है क्योंकि ऐसा करने से तो हम कहीं नहीं जाएंगे, इससे स्वस्थ समाज का निर्माण नहीं होगा। हिंद स्वराज लिखने के 36 साल बाद भी आपने नव समाज के निर्माण की अपनी परिकल्पना को बदला नहीं था। 1909 में 40–45 साल के मोहन दास बूढ़े नहीं थे, दुनिया देख चुके थे, दक्षिण अफ्रीका में काफी विजय मिल चुकी थी–मोहन दास को। ये बात उनकी समझ में आ रही थी कि पश्चिमी समाज जो कि औद्योगिक, आधुनिक और प्रगतिशील समाज है उसकी कुछ बातें बड़ी भयानक हैं। सबसे बड़ी भयानकता तो उन्हें यही दिख रही थी कि उसमें तो आदमी चालित हो रहा है, कोई अज्ञात शक्ति आदमी को चालित करती है। उसकी स्वतंत्रता का सवाल ही कहां है। मोहन दास करमचंद गांधी खुद ही व्यक्ति स्वातंत्र्य के सबसे बड़े वाहक और चालक थे। क्यों, बड़ा अजीज आदमी हैं उसके बोलने से लगती क्यों है, क्योंकि वो कसमें खाते हैं कि मैं कोई नई बात नहीं रख रहा हूं, मैं तो भारतीय परम्परा से जो कुछ सीखा हूं – वही आपको बता रहा हूं। मेरी कोई मौलिकता नहीं है। पर उसके बावजूद भी वह कह रहे हैं कि व्यक्ति मेरे लिए बहुत श्रेष्ठ है, स्वतंत्र है। व्यक्ति स्वतंत्र्य मेरे लिए बहुत मायने रखता है और वही बुनियाद है। क्यों कहते हैं, क्योंकि व्यक्ति का महत्व स्वीकार करने से जिन सामाजिक व्यवस्थाओं के अंदर शोषण वगैरह की प्रक्रियाएं है, उनसे बड़ी आसानी से मुक्त हुआ जा सकता है। व्यक्ति की स्वतंत्र पहचान बनने की वजह से उसकी सारी सामाजिक, राजनैतिक और सामुदायिक पहचान दोयम दर्जे की हो जाती है जिससे उसकी प्राथमिकता बनी रहती है। अब उसके विकास के लिए सारे प्रयास होने चाहिए, ये उनकी राजनीति है, बड़े गहरे आदमी हैं ये गांधी। इसीलिए हिंद स्वराज हमें आगाह कर रहा है कहां जा रहे हो? इस रास्ते पर जाओगे तो खतरा है।

आप लोग हिंद स्वराज देखना और पढ़ना, फिर मुझे चिट्ठी लिखना कि क्या वाहियात किताब हमारे सर पर मढ़ दी। पहली बार पढ़ोगे तो वाहियात ही लगेगी। क्योंकि गांधी ने कहा है कि रेलवे को बंद कर दो, डॉक्टर चोर हैं, वकील चोर हैं, तो इन सब को खत्म करो। हम लोग आजकल लाइन लगा रहे हैं कि डाक्टर बनना है इसीलिए तो एक से डेढ़ लाख की ट्यूशन लग रही है और ये आदमी कह रहा है कि डॉक्टर नहीं बनना है। पर जितनी बार ध्यान से पढ़ोगे तो बात समझ में आएगी कि वह कुछ कहने की कोशिश कर रहे हैं और वह कह रहे हैं कि इस सभ्यता में कुछ गड़बड़ी है, आज हम लोग उसकी चोट खा रहें हैं। 105 साल हो चुके हैं इंकलाब को लिखे हुए। आदमी दृष्टा है, 100 साल पहले देख सकता था। क्या गड़बड़ चल रही है, अब मैं उस मुद्दे पर आता हूं जिससे मैंने शुरुआत की थी।

जवाहर लाल नेहरू और गांधी जी का पत्राचार हो रहा है। 1945 में मोहन दास क्या लिखते हैं– ''मैं आधुनिक विज्ञान को मानता हूं परंतु पुरानी बात आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से देखता हूं।'' अगर आप ये बात समझते हैं कि मैं आपके गांवों की बात कर रहा हूं, तो आप मेरी बात नहीं समझ पाएंगे। मेरा आदर्श गांव तो अभी मेरी कल्पना में है और मेरी कल्पना का ग्रामवासी जड़ नहीं होगा, पूर्ण चैतन्य युक्त होगा। वह गंदगी में, अंधेरे में पशु का जीवन नहीं जिएगा। स्त्री और पुरुष दोनों स्वतंत्रतापूर्वक जिएंगे पूरी

दुनिया का सामना करने हेतु सिद्ध होंगे। वहां न हैजा होगा न प्लेग। चेचक भी नहीं होगा, वहां कोई आलसी भी नहीं रह पाएगा। न कोई ऐशोआराम मिलेगा सभी को शारीरिक श्रम करना पड़ेगा। यह सब होते हुए भी बहुत सारी चीजों की कल्पना कर सकता हूं, जिनकी व्यवस्था बड़े पैमाने पर करनी पड़ेगी। शायद रेलवे भी होगी और डाक–तार भी, क्या होगा और क्या नहीं होगा, वह मैं नहीं जानता मुझे उसकी चिंता भी नहीं है। मैं अगर मूल बात सिद्ध कर सकता हूं तो शेष बातें समय आने पर अपने आप ही आ जाएंगी। नेहरू भी उनको चिट्ठियां लिख रहे हैं। दोनों आपस में एक दूसरे को चिट्ठियां लिख रहे हैं। गांधी जी ने कहा कि तुम मेरे वारिस हो, तुम जवान हो, मेरी बातें समझते हो। बनिया होशियार है, माफ करना! मैं कोई गांधी का अपमान नहीं करता, मैं उनको बड़े प्यार से बनिया कहता हूं। मुझे संत कहने की कभी हिम्मत नहीं हुई। वे मुझे बनिये में ठीक लगते हैं। नेहरू सबसे ज्यादा शक्तिशाली हैं, जवान और युवाओं के प्रिय नेता हैं, इसीलिए वे चाहते हैं कि उनको बांध ले, पर ये भाई बंधने वाले नहीं हैं। बहुत सारी उनकी चिट्ठियां हैं पर मैं पढूंगा नहीं। अगर आप चाहें तो संदर्भ के तौर पर पढ़ सकते हैं।

मैं आपको बता दूं मुद्दे क्या हैं। नेहरू क्यों कहते हैं हिंद स्वराज एक बार देखा था मैं प्रभावित नहीं हुआ और मैं उसे कोई बहुत गंभीर नहीं मानता। कांग्रेस वर्किंग कमेटी में इस पर कभी चर्चा नहीं की और इसको गंभीर मानकर कोई प्रस्ताव पारित नहीं किया। हिन्दुस्तान के गांव कभी आदर्श नहीं थे और ना हो सकते थे। वे गंवार और अशिक्षित लोगों के पिछड़ेपन से ग्रसित समूह थे, जिन्हें शहरी सभ्यता सिखानी चाहिए ताकि वे सभ्य बनें। ग्राम स्वराज में कल्पित आर्थिक कार्यक्रमों के आधार पर भारत की बड़ी आबादी को रोटी कपड़ा और मकान नहीं दिए जा सकते। कृषि आधारित समाज की कल्पना वास्तविक नहीं है। विकास, आधुनिकता और सभ्यता का अर्थ – शहर, बढ़ता हुआ उद्योग, सम्पन्न समाज, जहां राज्य संगठित और संचालित, सुरक्षा, उद्योग के साथ देश की सलामती भी रखेगा। नेहरू गांधी को नकार रहे हैं क्योंकि नेहरू मुक्ति, स्वतंत्रता, प्रजातंत्र और समाजवाद की बात करते हैं। क्योंकि पूंजीवादी व्यवस्थाओं की कमजोरियों को दूर करने के लिए राज्य को लोक कल्याणकारी जवाबदारी देना जरूरी होता है और नेहरू इन मूल्यों में विश्वास करने वाले आधुनिक, प्रगतिशील और जवान है और एक ऐसे देश का बाशिंदा हैं जो देश अब स्वतंत्रता प्राप्त करने वाला है। गांधी, नेहरू को कहीं पुराने नजर आ रहे हैं। और वे ये मान कर चल रहे हैं कि गांधी जिन विकेन्द्रित व्यवस्थाओं की बात कर रहे हैं उसके आधार में जो कुछ है वो इसमें उभर कर नहीं आएगा। इसीलिए आश्चर्य की बात नहीं है कि गांधीजी की बात को नकारते हुए भारत देश, नेहरू के नेतृत्व में पंचवर्षीय योजना में जाता है और औद्योगिक देश बनने की कोशिश करता है और इसका परिमाण हम देख चुके हैं। मैं उस दिशा में नहीं जा रहा हूं क्योंकि वो सारी आर्थिक व्यवस्था है, मैं वापस शिक्षा की ओर लौट रहा हूं।

जिस मैकॉले की शिक्षा को हम आज तक गाली देते आ रहे हैं उस शिक्षा में कोई मूलभूत परितर्वन नहीं हुआ है। बहुत सारी बातें हुई, खैर क्या नहीं बदला; समाज किस तरह का होगा, अर्थव्यवस्था किस तरह की होगी, देश किस तरह नवनिर्मित होगा, इसके दर्शन और दृष्टि में जो दर्शन और दृष्टि पश्चिमी समाज के औद्योगिक समाज से आई हुई थी उसमें कोई परिवर्तन नहीं आया। इसीलिए मैकॉले इस देश से नहीं गया, फैशन के लिए जरूर चला गया। आज भी हम सब जो हैं, बच्चों को रटा देते हैं। मैकॉले की शिक्षा

पद्धति को जो गुलामी प्रथा कायम करने के लिए है इसीलिए तो उसको निकाल देना चाहिए। इसीलिए हमने शिक्षा में बहुत अच्छे–अच्छे प्रयास किए। हम कुछ मौलिक नहीं कर रहे हैं – वही के वही हैं, ये बात हमको समझ लेनी चाहिए। 1947 से 2014 तक शिक्षा संबंधी करीब एक सौ आयोग और विद्वानों की समितियों का गठन केन्द्र और अलग–अलग राज्यों में हुआ है। इन सबसे आप परिचित होंगे। इन सभी विशेषज्ञों और समितियों का आधार और निष्कर्ष यही है कि किस तरह से शिक्षा प्रणाली में सुधार हो। जिससे इस देश के विद्यार्थी देश को जल्दी से आधुनिक और औद्योगिक देश बना सके। तंत्र में सुधार के बड़े प्रयास हुए, अध्यापक शिक्षा के संदर्भ में मुख्य प्रयत्नों को देखें तो 1952 में माध्यमिक शाला कमीशन बैठा, जिसमें कहा गया कि शिक्षकों को व्यावसायिक तालीम दिलाएं। 1964 के कोठारी कमीशन को ऐसी ही आवश्यकता इसलिए महसूस हुई थी क्योंकि विज्ञान और टेक्नोलॉजी के युग में व्यक्ति और समाज में समृद्धि, कल्याण और सलामती, शिक्षा से ही स्थापित हो पाएगी। अतः शिक्षक व्यावसायिक तरीके से चुस्त–दुरुस्त होने चाहिए। 1952 के 'प्रोग्राम ऑफ एक्शन' में ये कहा गया कि शिक्षकों की तालीम निरंतर होनी चाहिए यानि सेवा से पहले और सेवारत होने के कुछ–कुछ अंतराल में। 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अंतर्गत डाइरेक्ट सीटीई (कॉलेज ऑफ टीचर एज्यूकेशन) की कल्पना हुई। इन सभी प्रयत्नों के बाद परिणाम बहुत उत्साहवर्धक नहीं रहा है।

2005 में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा आई और ये समझाया गया कि अभ्यास क्रम का मुद्दा अहम है, अब तो अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में, सरकार ने देश के अध्यापकों को व्यावसायिक और विषय विशेषज्ञ बनाने में एड़ी–चोटी का जोर लगा दिया और अगर फिर भी शिक्षा की गुणवत्ता में फर्क नहीं आता तो समस्या कहीं और है। फिर पाठ्यक्रम पर बात आई – उसमें सुधार किए गए। इस बीच एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन सारे देश में आ गया। 'लिबरल सोशल डेमोक्रेसी' की जगह 'लिबरल मार्केट डेमोक्रेसी' ने ले ली। राज्य की सत्ता के जख्म कम हो गए और सरकार की जवाबदारी नीति–निर्धारण तक सीमित हो गई। शिक्षा सामाजिक सेवा न रहकर आर्थिक सेवा हो गई। यानि शिक्षा एक वस्तु बन गई जिसकी खरीद–फरोख्त हो सकती है। गुणवत्ता वाली शिक्षा का मतलब– महंगी शिक्षा हुआ। इसी क्रम में 2009–2010 तक एक और तंत्र मूलक प्रयास हुआ राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (अध्यापक शिक्षा) की एक रिपोर्ट निकली उसका उपशीर्षक है 'पेशेवर और मानवीय शिक्षक तैयार करने की ओर'। इसका एक अर्थ यह होता है कि जो पेशेवर होता है, वो मानवीय नहीं होता है और जो मानवीय नहीं होता है तो वो शिक्षक कैसे हुआ? इतने सालों तक जब अध्यापक शिक्षा को पेशेवर बनाते रहे, तब तक नहीं समझ में आई यह बात कि वो तो मानवीय नहीं बन रहा है। वो कैसे मानवीय बनता क्योंकि वो उस शासन व्यवस्था के प्रबंधन और संचालन का परिणाम है जिसमें आपको बड़े–बड़े उद्योग चलाने हैं, शहरीकरण करना है, समाज की व्यवस्था करनी है, उसके लिए आपको चाहिए जगह, मजदूर, संसाधन, ये सब कहां से आएगा, क्यों ये सोच हमारी नहीं बनी? सबने इस तरफ पीढ़ी दर पीढ़ी लोगों को भटकने दिया है। ये सवाल हमारे मन में क्यों नहीं खड़े हुए? इसलिए नहीं खड़े हुए क्योंकि हम समझ रहे थे कि ठीक चल रहा है और बार–बार जो परिवर्तन किए, वो अच्छे परिवर्तन हैं। क्यों, सारे परिवर्तन यंत्र आधारित– तंत्र मूलक थे। 2010 की रिपोर्ट अलग नहीं है। जागने का समय है, शिक्षक पर ध्यान तो केंद्रित हुआ परंतु प्राथमिकता

तो अभी भी पेशेवर शिक्षक बनाने की ही है। विषय का विशेषज्ञ होना जरूरी है परन्तु यहां शिक्षक से यह अपेक्षित नहीं है कि वह देश और समाज की नवरचना में अपनी मौलिकता दिखाए। अपेक्षित यही है कि जो दर्शन और दृष्टि बन चुकी है उसके अनुसार ही वह विद्यार्थियों को तैयार करे। इस रपट की प्रस्तावना में शिक्षा के बुनियादी मुद्दों पर पेशेवर शिक्षक के व्यक्तित्व को भी शामिल करना होगा ताकि ये भी शिक्षा के आयामों का हिस्सा बन सके।

एक बार फिर यंत्राधारित नए तंत्र की रचना की बात करते हैं। समावेशी शिक्षा, समान–स्थायी विकास, लैंगिक परिप्रेक्ष्य, शिक्षा में समुदाय के ज्ञान की भूमिका से जुड़े मुद्दे, स्कूल में सूचना एवं प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल के साथ ई–लर्निंग भी इस ढांचे का मूल है। अब क्या होता है बदलकर के, फिर वो ही बात आ गई। स्थायी विकास भी करना पड़ेगा, लैंगिक परिप्रेक्ष्य भी लाने पड़ेंगे, सामुदायिक ज्ञान भी लाना पड़ेगा। ये सब हम लोग सूचना सम्प्रेषण तकनीक (आईसीटी) में डाल देंगे तो हो जाएगा। ये तो ठीक है और क्या हमारी हालत है, ये देखिए कि इस देश में जो भी विशेषज्ञ नए सिरे से बैठते हैं वे यही कहते हैं कि इससे पहले तो इस देश में कुछ हुआ ही नहीं। इसमें जिम्मेदार मैं भी हो सकता हूं, मैं इससे बच नहीं रहा हूं, पर मैं बच्चों को ये समझाना चाहता हूं कि हम लोग कह देते हैं कि आज तक जो हुआ वो सब कचरा था, इसे फिर नए सिरे से लगाना है। रिपोर्ट में लिखा गया है कि 2009 तक में देश में तालीमी शिक्षकों के प्रशिक्षण के हालात अच्छे नहीं थे। इन विशेषज्ञों का यह मानना है कि पूर्व प्राथमिक, प्रारम्भिक शिक्षा के बारे में विभिन्न अध्यापक शिक्षा के नियमित व दूरस्थ बीएड, एमएड, सीपीईडी, बीपीईडी, एमपीईडी, के पाठ्यक्रम बने हैं। सन् 2004 में 2000 संस्थानों में 3000 पाठ्यक्रम चले रहे थे। जिनकी संख्या 2009 में बढ़कर 14,428 पाठ्यक्रम हो गई। इस दौरान विद्यार्थियों की संख्या 49,600 से बढ़कर 2,74,000 हो गई।

यह विस्तार गुणवत्ता के कई मायनों और ढांचागत प्रावधानों, संकाय सदस्यों की योग्यता, अधिगम साधनों एवं विद्यार्थियों के प्रोफाइल में बड़ी गिरावट लेकर आया। अभी 2 दिसम्बर 2009 में 31 आईएएसई एवं 104 सीईटी स्वीकृत हुए जो देश के 599 जिलों में चल रहे हैं। हमारे देश के 571 जिलों में डायट की शुरुआत हुई, जिसमें 529 ही चल रही हैं। अभी 32 डायटों को क्रियाशील करना बाकी है, ये सभी संकाय सदस्यों की अनुपलब्धता का संकट झेल रही हैं। हमारे विशेषज्ञ कह रहे हैं कि 10 लाख विद्यार्थी हो गए पांच साल में। 3200 संस्थानों से बढ़कर संस्थानों की संख्या हो गई 11,900। पर माफ करना योग्य लोग नहीं मिल रहे हैं, डायट चलाने के लिए। ये दुर्भाग्य नहीं है क्या इस देश का? तो हम कर क्या रहे हैं, करोड़ों रुपये डाले हैं इसमें, पर हमारी ये हालत है। सीटीई और आईएएसई अपने आवश्यक कार्यों की पूर्ति में गंभीर असफलता का सामना कर रहे हैं। सारी समस्याएं कुल मिलाकर यह कहती हैं कि हमने पिछले 35 सालों में अध्यापक शिक्षा के बारे में ज्यादा कुछ किया ही नहीं। ऐसा तो नहीं है, यहां पर कई बुजुर्ग लोग बैठे हैं, जो इस व्याख्यान के खत्म होते ही मुझे जरूर कहेंगे कि भाई हम तो लगे हुए थे अच्छे से। हमने तो जिंदगी निकाल दी बच्चों के पीछे, सीखें हैं सारे। वे इसीलिए कह रहे हैं कि हम पूरे राष्ट्र के तौर पर जिस दृष्टि और दर्शन के पीछे पड़े हैं उसका तो यही परिणाम आना था।

इतनी सारी बातें मैं क्यों कह रहा हूं, क्योंकि उन मोहन दास को फिर याद कर रहा हूं जिसने कहा कि इस देश में शिक्षा ऐसे नहीं चलती थी।

हम लोग इतने बेवकूफ नहीं थे। इतिहासकार धर्मपाल की किताब, 'द ब्यूटीफुल ट्री' यहां लाइए और बच्चों को पढ़ाइए। मोहन दास ने गोलमेज सम्मेलन में हिन्दुस्तान की शिक्षा प्रणाली के बारे में, उसकी व्यवस्था के बारे में कहा था कि दैट इज लाइक ए ब्यूटीफुल ट्री इसलिए धर्मपाल ने अपनी किताब का नाम रखा 'द ब्यूटीफुल ट्री', जिसमें शिक्षा की पारंपरिक और पुरानी व्यवस्थाओं के बारे में रिपोर्ट है। जो हमारे शिक्षक हैं उन लोगों को पढ़नी चाहिए। 'द ब्यूटीफुल ट्री' को जरूरी संदर्भ में शामिल होना चाहिए। हिंद स्वराज में मोहनदास कहते हैं — अंग्रेज विद्वान प्रोफेसर हक्सले ने शिक्षा के विषय में कहा है— ''सच्ची शिक्षा उस आदमी को मिल रही है, जिसका शरीर ऐसा सधा हुआ है कि उसके अंकुश में रहता हो और सोचे हुए काम को आसानी और प्रसन्नतापूर्वक करता है; जिसकी बुद्धि शुद्ध, शांत और न्यायदर्शी है; जिसका मन प्रकृति के नियमों के ज्ञान से भरपूर है; जिसकी इन्द्रियां उसके वश में हैं, जिसकी अन्तःवृत्ति विशुद्ध है, जिसे बुरे कामों से नफरत है और दूसरों को भी अपने जैसा ही समझता है, ऐसे ही आदमी को सच्ची शिक्षा मिली हुई कह सकते हैं। क्योंकि वो प्रकृति के नियमों के अनुसार चलता है, वह प्रकृति का अधिकतम उपयोग करेगा और प्रकृति उसको सम्पोषित करेगी। ऐसी शिक्षा देने वाले शिक्षक का निर्माण करना है यह मेरी दूसरी चुनौती है। सिर्फ रिपोर्ट में यह कह देने से कि उसे मानवीय होना चाहिए, यह बात खत्म नहीं होगी। उसको मानवीय बनाने की कोई बात रिपोर्ट में लिखी नहीं जा सकती। यह रिपोर्ट में लिखने लायक बात नहीं है। अच्छी शिक्षा व्यवहार से आती है ऐसा मोहन दास करमचंद गांधी ने अपने जीवन में सीखा और हम सबको बताने की कोशिश की। अगर आज हमारा कोई गंभीर संकट है तो यही है कि हम शिक्षक का निर्माण नहीं करवा पा रहे हैं। शिक्षक का बाहरी आवरण ठीक करने की कोशिश कर रहे हैं पर उसका जो मानस है, उसको बनाने की कोशिश नहीं कर रहे हैं। जब तक हमारे समाज निर्माण की जो कल्पना है, उस कल्पना को समझते हुए शिक्षक जी नहीं रहा है, तब तक वह शिक्षक, शिक्षक नहीं हो सकता।

''सच्ची शिक्षा उस आदमी को मिल रही है, जिसका शरीर ऐसा सधा हुआ है कि उसके अंकुश में रहता हो और सोचे हुए काम को आसानी और प्रसन्नतापूर्वक करता है; जिसकी बुद्धि शुद्ध, शांत और न्यायदर्शी है; जिसका मन प्रकृति के नियमों के ज्ञान से भरपूर है; जिसकी इन्द्रियां उसके वश में हैं, जिसकी अन्तःवृत्ति विशुद्ध है, जिसे बुरे कामों से नफरत है और दूसरों को भी अपने जैसा ही समझता है, ऐसे ही आदमी को सच्ची शिक्षा मिली हुई कह सकते हैं।

कुछ दिनों में कक्षा की जरूरत नहीं पड़ेगी, पर अभी तो बच्चों ने स्कूल में यह कहना शुरू किया है कि क्या पढ़ा रहे हो, ये तो मैं जानता हूं। आपसे अच्छा जानता हूं, क्योंकि फलां साइट पर जाओगे तो यह कक्षा अच्छी चल रही है। खान अकादमी के बारे में सुना होगा आपने। बांग्लादेश का एक युवा अमेरिका गया और उस बेचारे की अपने भतीजे से कुछ बात हुई। पढ़ाने की कुछ मुश्किल थी। उसने कहा चल मैं तुझे कंप्यूटर पर समझा देता हूं। 'खान अकादमी' आज विश्व की बहुत बड़ी प्रख्यात अकादमी है। लाखों बच्चों को खान अकादमी प्रशिक्षित कर रही है। आप लोग गुगल करिए 'खान अकादमी' और आप लेसन ले सकते हैं। ऐसे कई साइट्स हैं जिस पर आपको ज्ञान लेने के

लिए शिक्षक की ज़रूरत नहीं है। अभी तो सरकारें 5300 रुपये में विद्या सहायक से काम चला रही है। ये लोग 2500 से काम शुरू किए थे। अब जाकर 5300 तक पहुंचे हैं। बाद में सरकार एक दिन हाथ उठाकर कह देगी कि ये सब हमारा काम नहीं हैं। चाहे स्कूल चले या न चले जाओ हमारे पास पैसा नहीं है, हम स्कूल नहीं चलाएंगे, क्या करोगे। कुछ नसीब वाले विद्यार्थी जो विद्या भवन जैसी जगह में पढ़ते हैं। बाकी सब जगह रेट चल रहा हैं– चालीस हजार से लेकर डेढ़ लाख रुपए में डीएड। क्लास नहीं करना है तो दो लाख में डिग्री हाथ में आएगी। दूसरा, मैंने बताया कि शिक्षा का व्यापारीकरण हो चुका है। शिक्षा वस्तु बन चुकी है। यह हो रहा है। शिक्षक कैसा होना चाहिए? इस बारे में आप सोचो। ईमानदारी से विद्यापीठ में थोड़ी–बहुत कोशिशें हो रही हैं शिक्षक बनाने की। बिना छात्रालय में रहे ये काम नहीं होगा और छात्रालय में सिर्फ छात्र बनकर नहीं रहना। छात्रालय में साथ में जीना है, साथ में काम करना है, साथ में झाड़ू लगेगी, साथ में खाना पकेगा, साथ में कपड़े धोए जाएंगे, साथ में बागवानी होगी, सब्जी उगाई जाएगी। यहां लड़कियों को बहुत फायदा हुआ है, क्योंकि वे आदिवासी क्षेत्रों से आती हैं। हिमोग्लोबिन कम होता है, तो हमने बोला सब्जी उगाओ, कचरे का कंपोस्ट किया, कैंपस में ही कंपोस्ट को छत पर डाला, मिट्टी डाली, पालक उगाया, दुधी (लौकी) उगी, हरी पत्तियां निकली, हरी साग–भाजी हुई। दो फीसदी हिमोग्लोबिन मेरी बेटियों का बढ़ गया और मेरा तो ऐसे ही बढ़ गया। मैंने कहा – ये तो अच्छी बात है। अब ये कहीं बीएड के कोर्स में नहीं है, ना ही एनसीएफ में है। अरे भई साथ रहने और काम करने से शिक्षा होती है – चरित्र का निर्माण होता है। मूल बात चरित्र निर्माण की है और जब हम साथ में रहते हैं तो चरित्र निर्माण होता है; वहां शिक्षक के चरित्र का बड़ा महत्व है। कोई कहता है कमाल के आदमी हो; मोबाइल नहीं रखते हो। मैं कहता हूं मोबाइल रखता हूं। जब गुजरात से बाहर निकलता हूं, मां की तबीयत अच्छी नहीं रहती है आजकल, इसीलिए मां से संपर्क करना पड़ता है। पर मैं कैंपस में नहीं रखता हूं क्योंकि मैंने बच्चों से कहा है – तुम भी नहीं रखोगे। वे लोग तो नहीं रखेंगे और मैंने रखा तो बोलेंगे– अच्छा ये नियम सिर्फ हमारे लिए है और आप बचे हुए हैं; जब चाहो तब एसएमएस कर रहे हो आप।

देखो भाई! शिक्षक का चरित्र बहुत जरूरी है, मोहनदास करमचंद गांधी जब तक छह घंटे काम में नहीं लगाते थे– आश्रम की खेती में। तब तक बच्चों से नहीं कह सकते थे कि खेती करो। मनुष्य निर्माण का जहां सवाल है; मनुष्यों में खासकर के शिक्षक का निर्माण करना है – इसमें दृष्टि और व्यवहार दोनों डालने पड़ेंगे। ये हमारी दूसरी चुनौती है– इस चुनौती के लिए हमारी आज कोई तैयारी नहीं है, शायद ये मुश्किल से आएगी और ये तैयारी एक साल में नहीं हो सकती।

मैं समझ सकता हूं मेरे पास बी.एड. करने के लिए विद्यार्थी जब आते है जो 10–12–15 साल किसी और स्कूल, कॉलेज में पढ़े हुए होते हैं। वे कहते हैं क्या वाहियात बात कर रहे हो, मैं यहां बी.एड. करने आया हूं, मुझसे मजदूरी करवाते हो। यह तो अच्छा है कि मैं 16 साल का हो गया हूं, नहीं तो मानव अधिकार में बाल मजदूरी का केस दायर कर देता। हमारी मुक्त होने की छटपटाहट ने – आधुनिक समाज में मानव अधिकार की जो बात आई है, उस अधिकार में कर्तव्य नदारद है। बिना कर्तव्य के अधिकारों से हिंसा, प्रत्यक्ष और भ्रांत्यात्मक, दोनों तरह की बढ़ती है, इससे अहिंसक समाज का निर्माण नहीं होता। 1937 में इस देश के लोगों ने सोचा कि चलो तैयारी करें, अब हमें आजादी मिलने ही वाली है। 1937 में कई राज्यों

में प्रांतीय सरकारें आई। हम लोग गुलाम थे, इसके बावजूद अंग्रेजों ने कहा कि तुम लोग सरकार बनाओ। प्रांतीय सरकारों के मुख्यमंत्रियों और शिक्षामंत्रियों का वर्धा के जमनादास बजाज मारवाड़ी स्कूल में एक राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ, जिसमें सारे दिग्गज लोग इकट्ठे हुए थे, जहां काफी गंभीर चर्चाएं हुई। हमने कभी उसको अपने कोर्स में लगाया नहीं। इस देश के किसी भी बी. एड. कॉलेज ने आज तक उसे कोर्स में नहीं लगाया कि उस सम्मेलन में क्या हुआ, उसमें कौनसे निर्णय लिए गए और उससे कौनसे पाठ्यक्रम निकले, उसकी कौनसी पद्धतियां निकली, उस पर हमने कभी काम नहीं किया। क्योंकि हमारी दिशा और दृष्टि में वो कभी थे ही नहीं।

उस सम्मेलन में तय हुआ था कि उसे बुनियादी तालीम, नई तालीम कहा जाएगा और उस नई तालीम की चार प्रमुख बातें थी। इस सम्मेलन में ये मूल्यांकन हुआ कि आज भी शिक्षा प्रणाली देश और समाज की आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त नहीं है। ''प्राथमिक शिक्षा सात साल की होनी चाहिए। सामान्य ज्ञान का स्तर मेट्रिकुलेशन तक का होनी चाहिए। अंग्रेजी मात्र आवश्यक स्तर पर और उद्योग की प्रधानता होनी चाहिए। लड़कियों और लड़कों के व्यक्तित्व के समग्र विकास हेतु शिक्षा ऐसे उद्योगों की सहायता से होनी चाहिए जो उत्पादक हो और आय पैदा करने वाली हो। उच्च शिक्षा निजी क्षेत्र के लिए छोड़ी जानी चाहिए और देश के उद्योग पर आधारित होनी चाहिए तथा देश की तकनीकी, कला और संस्कृति की आवश्यकताओं के अनुसार उनके अभ्यास क्रम होने चाहिए।'' क्या तय हुआ? सारे देश में 7 साल तक सभी बच्चों को प्राथमिक शिक्षा— निःशुल्क और आवश्यक रूप से दी जाएगी। आज नहीं तय हुआ 1937 में तय हुआ था। पर अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा लाते—लाते इस देश में 60 साल तक प्रयास करने पड़े, इतने महान लोगों के होते हुए भी। हम लोग बखान करते रहे अपने राष्ट्रीय साक्षरता मिशन, सर्वशिक्षा अभियान और क्या—क्या कार्यक्रम हम लोगों ने नहीं चलाए। 1937 में ये बात हुई, शिक्षा सिर्फ और सिर्फ मातृभाषा में ही दी जानी चाहिए। शिक्षा का मूल आधार किसी भी प्रकार के उद्योग एवं शारीरिक श्रम पर आधारित होना चाहिए। शिक्षकों को दिया जाने वाला पारिश्रमिक उत्पादक उद्योग से प्राप्त होना चाहिए। ये कठिन था, उसके बाद सरकार बदली और तय हुआ और इसे बुनियादी तालीम कहा गया। इसमें शिक्षकों की तालीम पर बात हुई और ऐसे शिक्षक कहां मिलेंगे, तो आपको बी.एड. में क्या करना है— पता है। कपास की खेती, ऊन और रूई बनाने की सभी प्रक्रिया, चरखे की बनावट और किस तरह से उसका जतन किया जाए — उसका विधान और सारे औजारों की तालीम और उद्योगों के पीछे जो शास्त्र है उसका ज्ञान और सुथारी काम, बढ़ाईगिरी सिखानी, उसके साथ खेती और गौपालन, कताई—बुनाई, शाजदानी पैदा करना, रूई पैदा करना,

प्राथमिक शिक्षा सात साल की होनी चाहिए। सामान्य ज्ञान का स्तर मेट्रिकुलेशन तक का होनी चाहिए। अंग्रेजी मात्र आवश्यक स्तर पर और उद्योग की प्रधानता होनी चाहिए। लड़कियों और लड़कों के व्यक्तित्व के समग्र विकास के हेतु शिक्षा ऐसे उद्योगों की सहायता से होनी चाहिए कि जो उत्पादक हो और आय पैदा करने वाली हो। उच्च शिक्षा निजी क्षेत्र के लिए छोड़ी जानी चाहिए और वह देश के उद्योग पर आधारित होनी चाहिए तथा देश की तकनीकी, कला और संस्कृति की आवश्यकताओं के अनुसार उनके अभ्यास क्रम होने चाहिए।

खिलौने बनाना, चर्म काम, कागज का काम, ये सब तालीमी शिक्षक को सिखाना था। इसके साथ–साथ शिक्षा के सारे सिद्धांत, नियम, पद्धतियों का अभ्यास सब करना है, ये मूल बात थी। उस कमेटी में यह चुनौती थी। कुल मिलाकर सपनों के बिना तंत्र रखना कोई मायने नहीं रखता और जो तंत्र हम रख रहे हैं वो किसी और सपने के पीछे लगा हुआ है। ऐसा नहीं कि उसका दर्शन नहीं है हमारा दर्शन तो वही है जो मैंने पहले बताया था। हम लोग एक छलावा करते हैं और मानते हैं कि हम अपने समाज का निर्माण करेंगे। हम अपने समाज का निर्माण मौलिकता से नहीं कर रहे हैं। हम लोग अच्छे नकलची भी नहीं हैं। नई पीढ़ी के साथ ये जो हो रहा है उसमें बड़ी मुश्किल लगती हैं। क्योंकि एक तरह से हम अपने आपको धोखा दे रहे हैं और हम धोखेबाज बनाएंगे।

शिक्षक को मानसिक तौर पर वानप्रस्थी होना चाहिए। कम से कम कोई भी गृहस्थ की आत्मा या चाह रखने वाला अच्छा शिक्षक नहीं हो सकता, ये शिक्षक को बनाने की बात है। छठी क्लास में मेरे साथ पढ़ने वाले दोस्त का नाम लेने में मुझे कोई हर्ज नहीं है। हीरालाल पारीख, गांधीधाम में आज 600 करोड़ का असामी है। कभी पास नहीं होता था, मुश्किल से पास होता था। नकल करता था मेरे साथ, अच्छा लड़का था। बड़ा इंटरप्राइजिंग लड़का था। बिजनस में आगे निकला। मैं पहले–दूसरे नंबर पर आता था। बेस्ट स्टूडेंट का खिताब भी पाया हुआ था। पर मेरे पास आज 85 यार्ड के दो बैडरूम के फ्लैट के सिवा कुछ नहीं है। मैं हीरालाल से प्रतिस्पर्धा नहीं करना चाहता हूं क्योंकि मेरी उससे कोई प्रतिस्पर्धा नहीं है। उसे व्यापारी या उद्योगपति बनना था वह बना। मुझे शिक्षक बनाना था मैं शिक्षक हूं। अगर मेरी मानसिकता यही है कि मेरे पास इसके जैसी मर्सीडीज गाड़ी क्यों नहीं है तो मैं शिक्षक नहीं बन सकता। मैं जरूरतों की बात नहीं करता हूं क्योंकि ये समाज की जिम्मेदारी है कि शिक्षकों की जरूरतों को पूरा करे, शिक्षक मानसिकता से गृहस्थ हो गया है इसलिए शिक्षक का अपना सत्व खत्म हो गया। यह बात इतनी महत्वपूर्ण है कि किसी सरकारी रिपोर्ट में लिखी नहीं जाती, इस पर कोई अमल नहीं होता। यह हमारी सबसे बड़ी चुनौती है।

मेरे मन में कुछ बातें थी जो मैंने सब के साथ बांटी, आज की पीढ़ी ये बात समझ जाए कि इस हिसाब से मोहन दास करमचंद गांधी एक बनिये थे, व्यावहारिक बातें करते थे। सबके लिए बात करते थे। सब के लिए बात करने वाला अच्छा बनिया नहीं है, सच्चे फायदे की बात करने वाला अगर बनिया नहीं है तो फिर क्या है। उसको संत बनाने की जरूरत नहीं है। सबका फायदा, कम खर्च और लम्बा चलने वाला, ये बनिये की समझ नहीं तो किसकी समझ है। मैं तो चाहता हूं कि शिक्षा में काम करने वाले हम सब लोग बनिये की समझ बना लें, तो हम अच्छे शिक्षक बना पाएंगे। ऐसी उम्मीद है। मैं कभी आशा नहीं छोड़ता और निराश कभी नहीं होता क्योंकि मेरा मानना है कि

''तुम में ही कोई गौतम होगा, तुम में ही कोई गांधी।''

सुदर्शन अय्यंगार : गूजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद के कुलनायक हैं। साथ ही आप कई राज्यों एवं राष्ट्रीय स्तर की सरकारी एवं गैर सरकारी सलाहकार समितियों के सदस्य हैं। गांधीवादी विचारधारा एवं उनका अमल, सामाजिक विकास के क्षेत्र में काम करने वाले संस्थान एवं प्राकृतिक संसाधन विकास एवं प्रबंधन आपके शोध क्षेत्र रहे हैं।

लिप्यंतरण : **कामिनी उपाध्याय** – विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केन्द्र, उदयपुर में कार्यरत।